

हिंदी भाषा की ध्वन्यात्मक, रूपात्मक एवं वाक्यगत विशेषताओं का भाषावैज्ञानिक अध्ययन

डॉ. अरविन्द सिंह तेजावत*

सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़, हरियाणा, भारत

office.tejawat@gmail.com

सार: प्रस्तुत शोध-पत्र हिंदी भाषा की संरचना का व्यवस्थित वर्णनात्मक विश्लेषण तीन स्तरों पर प्रस्तुत करता है—ध्वन्यात्मक, रूपात्मक एवं वाक्यगत। ध्वनि-स्तर पर हिंदी की स्वर-व्यवस्था, चतुष्क-आधारित व्यंजन-व्यवस्था, मूर्धन्य ध्वनियों की उपस्थिति, नुक्ता-ध्वनियों का समावेश तथा शब्दांत अकार-लोप जैसी विशिष्ट प्रवृत्तियों का परीक्षण किया गया है। रूप-स्तर पर द्वि-लिंगीय एवं द्वि-वचनीय संज्ञा-व्यवस्था, त्रि-रूपीय कारक-रचना, परसर्ग-प्रणाली, सर्वनामों में त्रिस्तरीय आदर-भेद तथा क्रिया की काल-पक्ष-वृत्ति व्यवस्था एवं संयुक्त क्रिया-रचना का विवेचन प्रस्तुत है। वाक्य-स्तर पर कर्ता-कर्म-क्रिया पदक्रम, विशेषण एवं संबंधबोधक की पूर्ववर्ती स्थिति, अन्विति के तीन प्रकार, कर्म-वाच्यमूलक "ने" रचना, पूर्वकालिक क्रिया-प्रत्यय तथा सापेक्ष-नित्यसंबंधी उपवाक्य-संरचना का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन में यह प्रतिपादित किया गया है कि हिंदी की अनेक विशेषताएँ उसे न केवल भारतीय आर्यभाषा परिवार का प्रतिनिधि बनाती हैं, अपितु उसे उस व्यापक "भारतीय भाषा-क्षेत्र" का अंग भी सिद्ध करती हैं जिसकी संकल्पना एम. बी. एमेनो ने प्रस्तुत की थी। विश्लेषण केलॉग, मैकग्रेगर, ओहाला, मासिका एवं शापिरो के वर्णनात्मक अध्ययनों तथा कामताप्रसाद गुरु एवं किशोरीदास वाजपेयी की व्याकरणिक परंपरा के आलोक में प्रस्तुत किया गया है।

मुख्य शब्द: हिंदी ध्वनि-व्यवस्था, चतुष्क, अकार-लोप, परसर्ग, कारक-रचना, कर्म-वाच्यमूलकता, अन्विति, संयुक्त क्रिया, भारतीय भाषा-क्षेत्र।

1. प्रस्तावना

किसी भाषा का वर्णनात्मक अध्ययन तीन स्तरों पर किया जाता है—ध्वनि-स्तर, रूप-स्तर एवं वाक्य-स्तर। हिंदी के संदर्भ में यह अध्ययन विशेष रूप से रोचक है, क्योंकि हिंदी एक ओर संस्कृत की उत्तराधिकारिणी होने के नाते भारोपीय परिवार की विशेषताएँ धारण करती है, दूसरी ओर सहस्राब्दियों के भाषिक संपर्क के कारण उसमें ऐसी विशेषताएँ भी विकसित हुई हैं जो द्रविड़ एवं मुंडा परिवारों से साझा हैं। इसी द्वैत ने हिंदी को टाइपोलॉजिकल दृष्टि से एक विशिष्ट स्थिति प्रदान की है [7], [9], [12]।

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य हिंदी की संरचनात्मक विशेषताओं का व्यवस्थित एवं तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत करना है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि "हिंदी" से यहाँ आधुनिक मानक हिंदी—अर्थात् खड़ी बोली पर आधारित मानक रूप—अभिप्रेत है; बोलीगत भिन्नताओं का उल्लेख केवल वहीं किया

गया है जहाँ वे संरचनात्मक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। पद्धति की दृष्टि से यह अध्ययन वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक है तथा उपलब्ध व्याकरणिक साहित्य एवं भाषावैज्ञानिक अनुसंधानों पर आधारित है।

2. ध्वन्यात्मक विशेषताएँ

2.1 स्वर-व्यवस्था

हिंदी की स्वर-व्यवस्था में सामान्यतः ग्यारह स्वर स्वीकार किए जाते हैं। संस्कृत की ह्रस्व-दीर्घ आधारित व्यवस्था हिंदी में आंशिक रूप से ही बची है—अ/आ, इ/ई तथा उ/ऊ के युग्मों में मात्रात्मक भेद के साथ-साथ गुणात्मक भेद भी विद्यमान है। "ए" एवं "ओ" हिंदी में सदैव दीर्घ हैं, जबकि "ऐ" एवं "औ" संस्कृत के विपरीत संयुक्त स्वर न रहकर एकल स्वर के रूप में उच्चरित होते हैं [4], [8], [10]।

हिंदी स्वर-व्यवस्था की सर्वाधिक उल्लेखनीय विशेषता अनुनासिकता का स्वनिमिक होना है। अर्थात् केवल नासिक्यता के आधार पर दो शब्दों के अर्थ में भेद हो सकता है, यथा "बास" एवं "बाँस", "हस" एवं "हंस", "आख" एवं "आँख"। यह विशेषता हिंदी को अनेक यूरोपीय भाषाओं से पृथक् करती है और उसे फ्रांसीसी एवं पुर्तगाली जैसी भाषाओं के निकट लाती है [8], [10], [13]।

2.2 व्यंजन-व्यवस्था

हिंदी की व्यंजन-व्यवस्था अपनी सुव्यवस्थित चतुष्क-रचना के लिए विश्व-भाषाओं में विशिष्ट स्थान रखती है। प्रत्येक स्पर्श-वर्ग में चार स्टॉप ध्वनियाँ होती हैं, जो घोषत्व एवं प्राणत्व के दो स्वतंत्र आयामों के संयोग से बनती हैं।

सारणी 1: हिंदी की स्पर्श व्यंजन-व्यवस्था (चतुष्क-रचना)

उच्चारण-स्थान	अघोष अल्पप्राण	अघोष महाप्राण	सघोष अल्पप्राण	सघोष महाप्राण	नासिक्य
कंठ्य	क	ख	ग	घ	ङ
तालव्य	च	छ	ज	झ	ञ
मूर्धन्य	ट	ठ	ड	ढ	ण

उच्चारण-स्थान	अघोष अल्पप्राण	अघोष महाप्राण	सघोष अल्पप्राण	सघोष महाप्राण	नासिक्य
दंत्य	त	थ	द	ध	न
ओष्ठ्य	प	फ	ब	भ	म

इस चतुर्विध विरोध की उपस्थिति भाषा-विश्व में अपेक्षाकृत दुर्लभ है। अधिकांश भाषाओं में या तो केवल घोषत्व का विरोध होता है अथवा केवल प्राणत्व का; दोनों का स्वतंत्र एवं समानांतर विरोध भारतीय आर्यभाषाओं की विशिष्ट पहचान है। मूर्धन्य ध्वनियों (ट, ठ, ड, ढ, ण) की उपस्थिति एक अन्य उल्लेखनीय विशेषता है, जिसे अनेक विद्वान द्रविड़ प्रभाव अथवा दीर्घकालिक भाषिक अभिसरण का परिणाम मानते हैं [5], [9], [12]।

इनके अतिरिक्त हिंदी में अरबी-फ़ारसी से आगत पाँच नुक्ता-ध्वनियाँ—क़, ख़, ग़, ज़, फ़—भी प्रचलित हैं। इनकी स्वनिमिक स्थिति विवादास्पद है: शिक्षित एवं नगरीय वक्ताओं के उच्चारण में ये पृथक् स्वनिम के रूप में कार्य करती हैं, जबकि अनेक क्षेत्रीय वक्ता इन्हें निकटतम देशी ध्वनि से प्रतिस्थापित कर देते हैं। इसी प्रकार "ड़" एवं "ढ़" की उत्क्षिप्त ध्वनियाँ भी हिंदी की विशिष्ट देन हैं, जो संस्कृत में स्वतंत्र वर्ण के रूप में विद्यमान नहीं थीं [4], [8], [14]।

2.3 विशिष्ट ध्वन्यात्मक प्रवृत्तियाँ

हिंदी की सर्वाधिक चर्चित ध्वन्यात्मक प्रवृत्ति शब्दांत एवं मध्यवर्ती अकार-लोप है। देवनागरी लेखन में प्रत्येक व्यंजन के साथ अंतर्निहित "अ" जुड़ा रहता है, किंतु उच्चारण में वह प्रायः लुप्त हो जाता है। इस प्रकार "घर" का लेखन "घ + अ + र + अ" है, किंतु उच्चारण में अंतिम "अ" का लोप हो जाता है। यह लोप स्वेच्छाचारी नहीं, अपितु नियमबद्ध है और अक्षर-संरचना पर आधारित है—यही कारण है कि "नमक" में मध्यवर्ती अकार सुरक्षित रहता है जबकि "नमकीन" में लुप्त हो जाता है [8], [10], [13]।

यह प्रवृत्ति हिंदी लेखन एवं उच्चारण के बीच एक व्यवस्थित अंतराल उत्पन्न करती है, जिसका व्यावहारिक महत्व वाक्-संश्लेषण एवं वाक्-अभिज्ञान प्रौद्योगिकी में विशेष रूप से है। बलाघात की दृष्टि से हिंदी एक "बलाघात-अप्रधान" भाषा मानी जाती है—अर्थात् बलाघात से अर्थ-भेद नहीं होता, जैसा अंग्रेज़ी में होता

है। अनुतान का प्रकार्य मुख्यतः वाक्य-स्तरीय है और वह प्रश्न, कथन एवं आदेश के भेद को इंगित करता है [4], [8]।

3. रूपात्मक विशेषताएँ

3.1 संज्ञा: लिंग, वचन एवं कारक-रचना

हिंदी में संस्कृत के तीन लिंगों में से नपुंसकलिंग का लोप हो चुका है और केवल पुल्लिंग एवं स्त्रीलिंग शेष हैं। इसी प्रकार संस्कृत के तीन वचनों में से द्विवचन लुप्त हो गया और एकवचन एवं बहुवचन ही बचे। कारक-व्यवस्था में सर्वाधिक व्यापक परिवर्तन हुआ—संस्कृत की आठ विभक्तियों के स्थान पर हिंदी में केवल तीन रूप शेष हैं: सामान्य (मूल), तिर्यक् (परसर्ग के पूर्व प्रयुक्त) एवं संबोधन [1], [6], [11]।

सारणी 2: हिंदी संज्ञा की रूपावली (आकारांत पुल्लिंग एवं ईकारांत स्त्रीलिंग)

रूप	एकवचन (पुल्लिंग)	बहुवचन (पुल्लिंग)	एकवचन (स्त्रीलिंग)	बहुवचन (स्त्रीलिंग)
सामान्य रूप	लड़का	लड़के	लड़की	लड़कियाँ
तिर्यक् रूप	लड़के (को)	लड़कों (को)	लड़की (को)	लड़कियों (को)
संबोधन रूप	लड़के!	लड़को!	लड़की!	लड़कियो!

सारणी से यह स्पष्ट है कि हिंदी की कारक-व्यवस्था संश्लेषणात्मक न रहकर वियोगात्मक हो चुकी है—व्याकरणिक संबंध अब प्रत्यय से नहीं, अपितु स्वतंत्र परसर्गों से व्यक्त होते हैं। तिर्यक् रूप का प्रकार्य केवल यह है कि वह परसर्ग के आगमन की सूचना दे [1], [6], [11], [14]।

3.2 परसर्ग-व्यवस्था

परसर्ग हिंदी व्याकरण का केंद्रीय उपकरण हैं। ये संज्ञा के पश्चात आते हैं—इसीलिए इन्हें "पर-सर्ग" कहा जाता है—और अंग्रेज़ी के पूर्वसर्गों (prepositions) के प्रकार्यात्मक समकक्ष हैं। प्रमुख परसर्ग हैं: ने (कर्ता), को (कर्म एवं संप्रदान), से (करण एवं अपादान), का/के/की (संबंध), में एवं पर (अधिकरण)।

इनमें "का/के/की" विशिष्ट है, क्योंकि यह एकमात्र परसर्ग है जो अपने आश्रित पद के लिंग एवं वचन के अनुसार परिवर्तित होता है—यह उसे विशेषण-सदृश व्यवहार प्रदान करता है [6], [11], [14]।

3.3 सर्वनाम एवं आदर-भेद

हिंदी सर्वनाम-व्यवस्था की सर्वाधिक उल्लेखनीय समाजभाषावैज्ञानिक विशेषता मध्यम पुरुष में त्रिस्तरीय आदर-भेद है—"तू", "तुम" एवं "आप"। यह त्रिस्तरीय विभाजन अनेक यूरोपीय भाषाओं की द्विस्तरीय व्यवस्था से अधिक सूक्ष्म है और वक्ता-श्रोता के सामाजिक संबंध को अत्यंत परिष्कृत रूप में अभिव्यक्त करता है। "आप" के साथ क्रिया सदैव बहुवचन रूप में आती है, भले ही संबोधित व्यक्ति एक ही हो। एक अन्य विशेषता यह है कि हिंदी में तृतीय पुरुष के लिए पृथक् सर्वनाम नहीं हैं—"यह" एवं "वह" वस्तुतः निर्देशक सर्वनाम हैं, जो दूरी के आधार पर भेद करते हैं [1], [11], [15]।

3.4 क्रिया-व्यवस्था

हिंदी क्रिया-व्यवस्था धातु के साथ प्रत्ययों एवं सहायक क्रियाओं के संयोग पर आधारित है। इसमें काल (समय), पक्ष (क्रिया की आंतरिक संरचना) एवं वृत्ति (वक्ता का दृष्टिकोण)—इन तीन कोटियों का पृथक् किंतु परस्पर संबद्ध निरूपण होता है।

सारणी 3: हिंदी क्रिया की प्रमुख कोटियाँ एवं उनके रूप

कोटि	रूप	उदाहरण	भाषावैज्ञानिक टिप्पणी
सामान्य वर्तमान	कृदंत + है	वह जाता है	अभ्यासगत पक्ष का द्योतक
सातत्यबोधक	धातु + रहा + है	वह जा रहा है	अपूर्ण पक्ष; अपेक्षाकृत नवीन विकास
सामान्य भूत	भूत कृदंत	वह गया	अपभ्रंश की कृदंत-परंपरा से व्युत्पन्न
पूर्ण भूत	कृदंत + था	वह गया था	पूर्ण पक्ष एवं भूत काल का संयोग
भविष्यत्	धातु + गा/गे/गी	वह जाएगा	"गा" संस्कृत "गत" से व्युत्पन्न

कोटि	रूप	उदाहरण	भाषावैज्ञानिक टिप्पणी
संयुक्त क्रिया	मुख्य + रंजक क्रिया	कर लेना, दे देना	पक्ष एवं दिशा का सूक्ष्म निरूपण

संयुक्त क्रिया हिंदी की सर्वाधिक विशिष्ट एवं अध्ययन-योग्य रचना है। इसमें मुख्य क्रिया के साथ एक "रंजक" क्रिया जुड़ती है, जो अपना मूल शाब्दिक अर्थ त्यागकर पक्ष, दिशा अथवा वक्ता की अभिवृत्ति का सूक्ष्म संकेत देती है। "उसने पत्र लिखा" एवं "उसने पत्र लिख डाला"—इन दोनों में क्रिया एक ही है, किंतु द्वितीय में पूर्णता एवं तीव्रता का अतिरिक्त अर्थ जुड़ जाता है। यह रचना अंग्रेज़ी में सीधे अनुवाद्य नहीं है और इसी कारण मशीन अनुवाद के लिए एक ज्ञात चुनौती बनी हुई है [2], [11], [15]।

4. वाक्यगत विशेषताएँ

4.1 पदक्रम एवं टाइपोलॉजिकल संगति

हिंदी का मूल पदक्रम कर्ता-कर्म-क्रिया (SOV) है। भाषा-टाइपोलॉजी के सिद्धांतों के अनुसार SOV भाषाओं में कतिपय अन्य विशेषताएँ भी संगत रूप से पाई जाती हैं, और हिंदी इस प्रतिरूप का लगभग आदर्श उदाहरण है: संबंधबोधक शब्द संज्ञा के पश्चात आते हैं (परसर्ग), विशेषण संज्ञा से पूर्व आता है, सहायक क्रिया मुख्य क्रिया के पश्चात आती है, तथा तुलना में मानक-पद विशेषण से पूर्व आता है। यह आंतरिक संगति हिंदी को टाइपोलॉजिकल अध्ययनों में एक सुसंगत उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करती है [7], [9], [12]।

यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि हिंदी का पदक्रम पूर्णतः कठोर नहीं है। बल एवं सूचना-संरचना की आवश्यकता के अनुसार पदों का स्थान-परिवर्तन संभव है, क्योंकि परसर्ग व्याकरणिक संबंध को स्पष्ट बनाए रखते हैं। तथापि क्रिया की अंतिम स्थिति अपेक्षाकृत स्थिर रहती है [11], [15]।

4.2 अन्विति की त्रिविध व्यवस्था

हिंदी वाक्य-रचना की सर्वाधिक विशिष्ट एवं विश्व-भाषाओं में दुर्लभ विशेषता उसकी त्रिविध अन्विति-व्यवस्था है। सामान्यतः भाषाओं में क्रिया या तो सदैव कर्ता से मेल खाती है अथवा सदैव कर्म से; हिंदी में यह वाक्य की संरचना के अनुसार परिवर्तित होता है।

सारणी 4: हिंदी में अन्विति के तीन प्रकार

प्रकार	शर्त	उदाहरण	क्रिया किससे मेल खाती है
कर्ता-अन्विति	कर्ता पर कोई परसर्ग नहीं	लड़की पुस्तक पढ़ती है	कर्ता (लड़की) से
कर्म-अन्विति	कर्ता के साथ "ने"; कर्म परसर्ग-रहित	लड़की ने पुस्तक पढ़ी	कर्म (पुस्तक) से
तटस्थ अन्विति	कर्ता एवं कर्म दोनों परसर्ग-युक्त	लड़की ने पुस्तक को पढ़ा	किसी से नहीं; तटस्थ रूप

यह व्यवस्था "विभक्त कर्म-वाच्यमूलकता" (split ergativity) का उदाहरण है और भाषावैज्ञानिक अनुसंधान में इसका विशेष महत्व है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह रचना संस्कृत के भूतकालिक कर्मवाच्य से विकसित हुई—"तेन पुस्तकं पठितम्" में कर्ता तृतीया विभक्ति में था और क्रिया कर्म से मेल खाती थी। अपभ्रंश-काल में विभक्ति के क्षय के पश्चात उसका स्थान परसर्ग "ने" ने ले लिया, किंतु अन्विति का मूल प्रतिरूप यथावत् बना रहा [3], [7], [11], [12]।

4.3 अन्य वाक्यगत विशेषताएँ

- **पूर्वकालिक क्रिया:** "-कर" प्रत्यय से बनने वाली रचना (जाकर, देखकर) दो क्रियाओं के क्रमिक संबंध को अत्यंत संक्षेप में व्यक्त करती है; यह अपभ्रंश के "-एवि/-एप्पिणु" प्रत्ययों की उत्तराधिकारिणी है [3], [12]।
- **सापेक्ष-नित्यसंबंधी उपवाक्य:** "जो...वह" की युग्म-संरचना, जो संस्कृत की "यद्...तद्" संरचना का परवर्ती रूप है; यह हिंदी को अंग्रेज़ी के सापेक्ष उपवाक्य से पृथक् करती है [11], [15]।
- **निषेध:** "नहीं", "न" एवं "मत" का प्रकार्यात्मक विभाजन—क्रमशः सामान्य निषेध, आश्रित उपवाक्य में निषेध तथा निषेधात्मक आदेश।

- **प्रश्नवाचक शब्दों की स्थिति:** हिंदी में प्रश्नवाचक शब्द वाक्य के आरंभ में स्थानांतरित नहीं होता, अपितु अपने मूल स्थान पर बना रहता है—"तुमने क्या पढ़ा?" यह SOV भाषाओं की सामान्य प्रवृत्ति है [7], [9]।
- **अनिवार्य कर्ता का अभाव:** हिंदी में कर्ता का लोप संभव है, क्योंकि क्रिया-रूप स्वयं पुरुष एवं वचन का संकेत दे देता है।

4.4 वाच्य-व्यवस्था एवं अकर्मक रचनाएँ

हिंदी की वाच्य-व्यवस्था में कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य एवं भाववाच्य—तीनों की पहचान पारंपरिक व्याकरण में की जाती है। कर्मवाच्य का निर्माण भूतकालिक कृदंत के साथ "जाना" क्रिया के संयोग से होता है, यथा "पत्र लिखा गया"। यह रचना संस्कृत के कर्मवाच्य से संरचनात्मक रूप से भिन्न है, क्योंकि वहाँ कर्मवाच्य प्रत्यय-आधारित था जबकि हिंदी में वह विश्लेषणात्मक एवं सहायक-क्रिया-आधारित है [6], [11]।

एक विशिष्ट रचना "अक्षमता-सूचक कर्मवाच्य" है, जिसमें कर्ता "से" परसर्ग के साथ आता है—"मुझसे यह काम नहीं हुआ"। यहाँ कर्मवाच्य का प्रकार्य निष्क्रियता का द्योतन नहीं, अपितु कर्ता की असामर्थ्य का संकेत है। इसी प्रकार हिंदी में अनुभव-सूचक क्रियाओं के साथ कर्ता "को" परसर्ग लेता है—"मुझे ठंड लगती है", "उसे यह पसंद है"। ऐसे कर्ता को भाषावैज्ञानिक साहित्य में "अनुभवकर्ता कर्ता" कहा जाता है और यह दक्षिण एशियाई भाषाओं की एक सुप्रलेखित साझा विशेषता है [9], [10], [12]।

प्रेरणार्थक रचना भी हिंदी की एक उत्पादक व्यवस्था है, जिसमें धातु में "-आ" एवं "-वा" प्रत्यय जोड़कर द्विस्तरीय प्रेरणा व्यक्त की जाती है—"करना", "कराना", "करवाना"। यह त्रिस्तरीय विभाजन अंग्रेज़ी में सीधे अनुवाद्य नहीं है और हिंदी की रूप-रचनात्मक सूक्ष्मता का उल्लेखनीय उदाहरण प्रस्तुत करता है [6], [10], [11]।

5. शब्द-रचना एवं शब्द-भांडारिक स्तर-भेद

रूप-विज्ञान के अंतर्गत केवल रूपावली ही नहीं, अपितु शब्द-रचना की प्रक्रियाएँ भी आती हैं। हिंदी में नवशब्द-निर्माण की चार प्रमुख प्रक्रियाएँ सक्रिय हैं—उपसर्ग-योग, प्रत्यय-योग, समास एवं द्वित्व। इनमें से द्वित्व (पुनरुक्ति) हिंदी की विशेष रूप से उत्पादक प्रक्रिया है और यह भारतीय भाषा-क्षेत्र की साझा विशेषताओं में गिनी जाती है। "घर-घर", "धीरे-धीरे", "कभी-कभी" जैसे पूर्ण द्वित्व तथा "चाय-वाय", "पानी-वानी" जैसे प्रतिध्वन्यात्मक द्वित्व—दोनों ही रूप अत्यंत प्रचलित हैं। प्रतिध्वन्यात्मक द्वित्व में द्वितीय

पद का प्रथम व्यंजन नियमबद्ध रूप से "व" से प्रतिस्थापित होता है, जो एक स्पष्ट रूपात्मक नियम है [5], [9], [10]।

समास-रचना में हिंदी ने संस्कृत की परंपरा को यथावत् ग्रहण किया है—तत्पुरुष, कर्मधारय, द्विगु, द्वंद्व, बहुव्रीहि एवं अव्ययीभाव—यद्यपि व्यवहार में तत्पुरुष एवं द्वंद्व सर्वाधिक उत्पादक हैं। उल्लेखनीय यह है कि हिंदी में समास-रचना का प्रयोग तत्सम शब्दावली में सघन है, जबकि तद्भव एवं देशज शब्दावली में परसर्ग-आधारित विश्लेषणात्मक रचना अधिक प्रचलित है—"राजपुत्र" बनाम "राजा का बेटा"। यह द्वैत हिंदी शब्द-भंडार के स्तर-भेद का प्रत्यक्ष परिणाम है [13], [14]।

सारणी 5: हिंदी शब्द-भंडार के स्तर एवं उनकी संरचनात्मक विशेषताएँ

स्तर	स्रोत	उदाहरण	संरचनात्मक विशेषता
तत्सम	संस्कृत से अपरिवर्तित गृहीत	अग्नि, हस्त, दुग्ध, कर्म	संयुक्त व्यंजन एवं समास-प्रवृत्ति
तद्भव	प्राकृत-अपभ्रंश से क्रमिक विकसित	आग, हाथ, दूध, काम	सरल अक्षर-संरचना; उच्च प्रयोग-आवृत्ति
देशज	लोकभाषिक एवं अज्ञात स्रोत	खिड़की, ठेस, लोटा	व्युत्पत्ति अनिश्चित
विदेशज (अरबी-फ़ारसी)	मध्यकालीन संपर्क	क़लम, दफ़्तर, ज़मीन	नुक्ता-ध्वनियों का स्रोत
विदेशज (अंग्रेज़ी)	औपनिवेशिक एवं आधुनिक संपर्क	स्टेशन, डॉक्टर, कंप्यूटर	नवीन अक्षर-संयोग एवं ऑ ध्वनि

इस स्तर-भेद का भाषावैज्ञानिक महत्व यह है कि हिंदी की ध्वनि-व्यवस्था स्तर-सापेक्ष है। कतिपय ध्वनि-संयोग केवल तत्सम शब्दों में मिलते हैं, कतिपय केवल विदेशज शब्दों में। उदाहरणार्थ "ऑ" ध्वनि, जो "डॉक्टर" एवं "कॉलेज" जैसे शब्दों में आती है, हिंदी की मूल ध्वनि-व्यवस्था का अंग नहीं थी और अंग्रेज़ी-

संपर्क से जुड़ी। इसी प्रकार शब्दारंभ में कतिपय संयुक्त व्यंजन-गुच्छ केवल आगत शब्दों में ही संभव हैं। अतः हिंदी की स्वनिम-सूची को एकल एवं समरूप मानना पर्याप्त नहीं है; उसे स्तर-सापेक्ष उपव्यवस्थाओं के समुच्चय के रूप में देखना अधिक यथार्थ है [4], [8], [9], [13]।

6. टाइपोलॉजिकल स्थिति एवं भारतीय भाषा-क्षेत्र

हिंदी की उपर्युक्त विशेषताओं का परीक्षण करने पर एक महत्वपूर्ण तथ्य सामने आता है: इनमें से अनेक विशेषताएँ केवल भारोपीय उत्तराधिकार से व्याख्येय नहीं हैं। मूर्धन्य ध्वनियों की उपस्थिति, SOV पदक्रम, पूर्वकालिक क्रिया-रचना तथा संयुक्त क्रिया—ये सभी द्रविड़ भाषाओं में भी समान रूप से मिलती हैं, यद्यपि वे एक भिन्न भाषा-परिवार की सदस्य हैं [5], [9], [12]।

इसी आधार पर एम. बी. एमेनो ने अपने प्रसिद्ध निबंध में यह प्रतिपादित किया कि भारतीय उपमहाद्वीप एक "भाषा-क्षेत्र" (linguistic area) है, जहाँ भिन्न-भिन्न परिवारों की भाषाएँ दीर्घकालिक संपर्क के कारण संरचनात्मक रूप से अभिसृत हो गई हैं [5]। कॉलिन मासिका ने इस संकल्पना को और विस्तृत करते हुए यह दर्शाया कि यह अभिसरण ध्वनि, रूप एवं वाक्य—तीनों स्तरों पर हुआ है [9]। इस दृष्टि से हिंदी का अध्ययन केवल एक भाषा का अध्ययन नहीं, अपितु एक व्यापक भाषिक अभिसरण-प्रक्रिया का अध्ययन भी है।

यहाँ एक पद्धतिगत सावधानी अपेक्षित है। किसी विशेषता की उपस्थिति मात्र से संपर्क-जन्य प्रभाव सिद्ध नहीं होता; वह स्वतंत्र आंतरिक विकास का परिणाम भी हो सकती है। अतः अभिसरण का दावा तभी पुष्ट माना जाता है जब ऐतिहासिक साक्ष्य यह दर्शाएँ कि संबंधित विशेषता पूर्ववर्ती अवस्था में अनुपस्थित थी और संपर्क-काल में विकसित हुई। मूर्धन्यीकरण के प्रश्न पर विद्वानों में आज भी मतभेद है—कतिपय विद्वान इसे द्रविड़-प्रभाव मानते हैं, जबकि अन्य इसे भारोपीय आंतरिक विकास सिद्ध करने का प्रयास करते हैं [5], [7], [9], [12]।

7. अध्ययन की सीमाएँ एवं भावी अनुसंधान-दिशाएँ

प्रस्तुत अध्ययन की कतिपय सीमाएँ स्पष्ट रूप से स्वीकार्य हैं। सर्वप्रथम, यह अध्ययन आधुनिक मानक हिंदी पर केंद्रित है और बोलीगत विविधता का उल्लेख केवल प्रासंगिक स्थलों पर हुआ है। यह सीमा महत्वपूर्ण है, क्योंकि अनेक संरचनात्मक विशेषताएँ बोलियों में भिन्न रूप धारण करती हैं—उदाहरणार्थ कर्म-वाच्यमूलक "ने" परसर्ग का प्रयोग पूर्वी हिंदी की बोलियों में अनुपस्थित अथवा अत्यंत सीमित है,

जबकि पश्चिमी हिंदी में वह अनिवार्य है। इस भिन्नता का व्यवस्थित तुलनात्मक अध्ययन हिंदी की ऐतिहासिक व्याकरण-रचना के लिए अत्यंत मूल्यवान होगा [3], [9], [12]।

द्वितीय, यह अध्ययन वर्णनात्मक है और किसी विशिष्ट व्याकरणिक सिद्धांत-ढाँचे के अंतर्गत औपचारिक निरूपण प्रस्तुत नहीं करता। तृतीय, विश्लेषण द्वितीयक स्रोतों एवं प्रकाशित व्याकरणों पर आधारित है; इसमें कोई मौलिक संग्रह-आधारित आवृत्ति-विश्लेषण सम्मिलित नहीं है, जो समकालीन प्रयोग की प्रवृत्तियों को अधिक यथार्थ रूप में प्रस्तुत कर सकता था।

इन सीमाओं को देखते हुए भावी अनुसंधान की कुछ दिशाएँ विशेष रूप से संभावनाशील प्रतीत होती हैं। प्रथम, अकार-लोप के नियमों का संगणकीय प्रतिरूपण, जो वाक्-संश्लेषण एवं वाक्-अभिज्ञान प्रौद्योगिकी के लिए प्रत्यक्ष उपयोगिता रखता है। द्वितीय, संयुक्त क्रिया में रंजक क्रियाओं के अर्थ-योगदान का संग्रह-आधारित विश्लेषण, क्योंकि यह क्षेत्र मशीन अनुवाद की एक ज्ञात एवं अनसुलझी चुनौती है। तृतीय, अन्विति-व्यवस्था के बोलीगत भेदों का क्षेत्र-सर्वेक्षण आधारित मानचित्रण। चतुर्थ, समकालीन नगरीय हिंदी में अंग्रेज़ी-मिश्रण के व्याकरणिक प्रतिबंधों का अध्ययन—अर्थात् यह प्रश्न कि कोड-मिश्रण किन संरचनात्मक बिंदुओं पर संभव है और किन पर नहीं। यह अंतिम क्षेत्र समकालीन भाषिक परिवर्तन को समझने की दृष्टि से विशेष रूप से महत्वपूर्ण है [7], [10], [11], [15]।

8. निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि हिंदी की संरचना तीनों स्तरों पर एक सुसंगत एवं आंतरिक रूप से संबद्ध व्यवस्था प्रस्तुत करती है। ध्वनि-स्तर पर उसकी चतुष्क-आधारित व्यंजन-व्यवस्था, स्वनिमिक अनुनासिकता एवं नियमबद्ध अकार-लोप उसे विशिष्ट पहचान प्रदान करते हैं। रूप-स्तर पर वह संश्लेषणात्मक से वियोगात्मक की ओर हुए ऐतिहासिक संक्रमण का स्पष्ट उदाहरण है—विभक्तियों का स्थान परसर्गों ने ले लिया और कारक-रचना तीन रूपों तक सीमित हो गई।

वाक्य-स्तर पर हिंदी की त्रिविध अन्विति-व्यवस्था उसकी सर्वाधिक उल्लेखनीय विशेषता है, जो एक ही भाषा में कर्ता-अन्विति, कर्म-अन्विति एवं तटस्थ अन्विति—तीनों को समाहित करती है। यह व्यवस्था केवल व्याकरणिक कुतूहल का विषय नहीं, अपितु ऐतिहासिक भाषाविज्ञान की दृष्टि से एक जीवंत साक्ष्य है, जो संस्कृत के कर्मवाच्य से आधुनिक कर्म-वाच्यमूलक रचना तक की यात्रा को संरक्षित रखे हुए है।

अंततः यह रेखांकित करना आवश्यक है कि हिंदी की संरचना को केवल भारोपीय उत्तराधिकार के रूप में समझना अपर्याप्त है। उसकी अनेक विशेषताएँ भारतीय उपमहाद्वीप की दीर्घकालिक बहुभाषिक

अंतःक्रिया की देन हैं। इस अर्थ में हिंदी की संरचना स्वयं भारत की सामासिक संस्कृति का भाषिक प्रतिबिंब है। भावी अनुसंधान के लिए संयुक्त क्रिया की अर्थ-संरचना, अकार-लोप के नियमों का संगणकीय प्रतिरूपण तथा बोलीगत अन्विति-भेदों का तुलनात्मक अध्ययन—ये तीन दिशाएँ विशेष रूप से संभावनाशील प्रतीत होती हैं।

संदर्भ सूची

1. केलॉग, एस. एच. (1938). हिंदी भाषा का व्याकरण (तीसरा संस्करण). लंदन: केगन पॉल, ट्रेच, टूबनर एंड कंपनी।
2. बट, एम. (1995). उर्दू में जटिल विधेय की संरचना। स्टैनफोर्ड: सीएसएलआई प्रकाशन।
3. ब्लोच, जे. (1965). वेदों से आधुनिक काल तक इंडो-आर्यन (ए. मास्टर, अनुवादक)। पेरिस: एड्रियन-मैसनन्यूव।
4. ओहाला, एम. (1983). हिंदी ध्वनिविज्ञान के पहलू। दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास।
5. एमेन्यू एम. बी. (1956). "भारत एक भाषाई क्षेत्र के रूप में।" भाषा, 32(1), 3-16।
6. मैकग्रेगर, आर. एस. (1995). हिंदी व्याकरण की रूपरेखा (तीसरा संस्करण)। ऑक्सफोर्ड: क्लेरेंडन प्रेस।
7. कॉमरी, बी. (1989)। भाषा सार्वभौमिक और भाषाई टाइपोलॉजी (दूसरा संस्करण)। शिकागो: शिकागो विश्वविद्यालय प्रेस।
8. शापिरो, एम.सी. (1989)। आधुनिक मानक हिंदी का एक प्राइमर। दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास।
9. मैसिका, सी.पी. (1991)। इंडो-आर्यन भाषाएँ। कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
10. कचरू, वाई. (2006)। हिंदी. एम्स्टर्डम: जॉन बेंजामिन पब्लिशिंग कंपनी।
11. मोंटौट, ए. (2004)। हिंदी का एक व्याकरण. म्यूनिख: लिनकॉम यूरोपा।
12. कार्डोना, जी., और जैन, डी. (सं.) (2003)। इंडो-आर्यन भाषाएँ। लंदन: रूटलेज।
13. गुरु, कामताप्रसाद (1920). *हिंदी व्याकरण*. वाराणसी: नागरी प्रचारिणी सभा।

14. वाजपेयी, किशोरीदास (1957). *हिंदी शब्दानुशासन*. वाराणसी: नागरी प्रचारिणी सभा.
15. तिवारी, भोलानाथ (1966). *भाषाविज्ञान*. इलाहाबाद: किताब महल.